कल्पसूत्रमें भद्रबाहु-प्रयुक्त 'याग' शब्द

-विजयशीलचन्द्रस

आर्य भद्रबाहुस्वामी भगवान महावीरकी शिष्य-परंपरामें षष्ठ पट्टधर। एवं अन्तिम श्रुतकेवली भी[१]। श्वेताम्बर-परंपरा-मान्य आगमग्रन्थ श्रीकल्पसू में उनको आर्य यशोभद्रके शिष्य प्राचीनगोत्रीय आर्य भद्रबाहुके नामसे पहच गए हैं।

जैन श्रमणसंघके प्रधान श्रुतधरपुरुष होनेके अधिकारसे उन्होने बहुत सा आगमिक ग्रंथरचनाएं[२] की है, जिसमें एक है दसासुअक्खंध सूत्र। छेदसूत्र रूपसे प्रसिद्ध इस आगमग्रंथका आठवाँ अध्ययन है कल्पसूत्र। इस कल्पसूत्रव स्वयं श्रीभद्रबाहुस्वामीने श्रीमहावीरस्वामी-प्रमुख तीर्थंकर चरित्र, स्थविरावल तथा सामाचारी - इन तीन विभागोंमें बांट दिया है। यह समूचा कल्पस श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन संघकी परंपरामें, कई शतियों से, प्रतिवर्ष, पर्युषणा प के पिछले पांच दिनोमें, सर्वत्र एवं जाहिरमें पढा जाता है। साधुगण इसव सार्थ-सटीक वाचन करता है और उपस्थित शेष सर्व संघ श्रवण करता है।

चूंकि श्रीभद्रबाहु जन्मना ब्राह्मण थे और कर्मणा जैन श्रमण थे, अतः इ दोनों परंपराओंको संकेतित व संकलित करनेवाला एक विलक्षण शब्द प्रयो उन्होने कल्पसूत्रमें किया है, जो उनके जैसे समर्थ श्रुतधर ही कर सकते थे। व शब्द है - 'याग'। सूत्र इस प्रकार है :-

"तए णं से सिद्धत्थे राया दसाहियाए ठिइपडियाते वट्टमाणीए सइए साहस्सिए य सयसाहस्सिए य जाए य दाए य भाए य दलमाणे य दवावेमाणे य"

प्रसंग ऐसा है कि वर्धमानस्वामीके जन्म होनेके पश्चात् उनके पिता रा सिद्धार्थ दशदिवसीय स्थितिपतिता अर्थात् कुलमर्यादा पालते हैं। उस सर्वप्रथम वे शतिक, साहस्त्रिक व शतसाहस्त्रिक 'याग' कर रहे हैं व करवा रहे हैं। यहां 'याग' का तात्पर्य क्या हो सकता है ?। वैसे 'याग' शब्द सि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ण-परंपरामें प्रचलित है, और उसका मुख्य अर्थ है यज्ञ[५]। यज्ञ का तात्पर्य -स्मार्त्त उन विविध यज्ञोंसे हो सकता है जो कि ब्राह्मणीय कर्मकाण्ड-थोमें वर्णित हैं। किन्तु कल्पसूत्र स्वयं जैन आगमग्रंथ है और फिर एक जैन धर श्रमणने उसकी रचना की है, तो उसमें यज्ञार्थक 'याग' शब्दका प्रयोग ला कैसे हो सकता है ?।

यह स्वयंस्पष्ट है कि याग शब्दका ऐसा प्रयोग ग्रंथकार महर्षिके ब्राह्मण-स्कारों को ही उजागर करता है। किन्तु उनके दिमागमें इस शब्द-प्रयोग के मय 'याग' का तात्पर्य 'यज्ञ' परक नहीं है, यह भी उतना ही स्पष्ट है। फिर ाग' जैसे ब्राह्मण-परंपरामें रूढ शब्दको जैन-परंपरामें प्रयुक्त करना, यह उनके धिकारमण्डित सामर्थ्यका भी द्योतक बन जाता है।

विवरणकारों के अनुसार 'याग' शब्द यहां 'पूजा' के अर्थमें[६] प्रयोजित है भगवान महावीरके पिता तेईसवें तीर्थंकर श्रीपार्श्वनाथकी परंपरामें श्रावक[७] थे, बात तो शास्त्रसिद्ध है। और उन्होंने अपने यहां पुत्रजन्म हुआ, इस निमित्त को कर अनेकविध पूजाएं की व करवाई थी। उसी पूजाके अर्थमें यहां 'याग' द प्रयुक्त है; अन्य अर्थका यहां अवसर ही नहीं है।[८]

कोश भी 'याग' के इस अर्थको समर्थित करता है[९], अतः 'याग' को जार्थक माननेमें आपत्ति भी नहीं होगी।

यद्यपि यहां एक प्रश्न हो सकता है : उक्त सूत्रमें कर्त्ताने 'जाए य दाए य ए य दलमाणे य दवावेमाणे य' ऐसा लिखा है। वहां क्रिया है देनेकी व लानेकी, जिसका अनुबंध 'दाय' व 'भाग' इन दोनों के साथ तो ठीक ढंगसे हो ता है। किन्तु 'याग' के साथ 'दलमाणे य दवावेमाणे य' का संबन्ध किस ह हो पाएगा ?। 'याग' तो करने-कराने की चीज है, 'देने-दिलाने' की नहीं। यद इसी प्रश्नको महत्त्व देकर आ. देवेन्द्रमुनि शास्त्रीने अपनी व्याख्यामें[१०] गका अर्थ 'पूजा - सामग्रियां' कर दिया है, जो कि 'दी जा सकती है'।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु यागका यह अर्थ वास्तविक नहीं हो सकता। यह अर्थ लक्षणा मददसे ही प्राप्त हो सकेगा, अभिधाकी दृष्टिसे कभी नहीं। फिर यह अर्थ को सम्मत भी नहीं है, एवं पुराने विवरणकारोंने भी कहीं नहीं स्वीकारा या दिख है। विवरणकारों का आशय, शायद, ऐसा मालूम होता है कि वे 'जाए य' साथ अनुबंध रखनेवाली क्रिया को यहां अध्याहृत[१२] मानके चले हैं, और सुसंगत भी प्रतीत होता है। अवास्तविक लक्षणाप्राप्त अर्थ स्वीकारनेकी ब वास्तविक वाक्यशेष स्वीकारना अधिक उचित भी बनेगा।

"जाए य दाए य भाए य दलमाणे य दवावेमाणे य" इस वाक्यमें 'दाए' 'भाए' - इन तीनों पदों को सप्तम्यन्त मान लिया जाय और उनका 'यागमें, भागमें व दायमें देते - दिलाते' ऐसा किया जाय तो ठीक लगता क्योंकि वे राजा सर्व धर्मोंको आदर देनेवाले थे, अतः 'याग' ब्राह्मणधर्म क्रिया भले हो, किन्तु राजाके यहां पुत्रजन्म होनेकी खुशालीमें सभी धर्मके अपनी अपनी पूजाविधि करते होंगे और राजा उसमें उनको समर्थन देता हो ऐसी भी एक कल्पनाको यहां अवकाश है।

परन्तु यह कल्पना अवास्तविक लगती है। क्योंकि यदि 'यागमें, व भागमें देना-दिलाना' ऐसा अर्थ किया जाय तो प्रथम तो 'दी जानेवाली अध्याहारसे या वाक्यशेषसे ढूंढनी पडेगी। क्योंकि जो 'दाय, भाग' दे क्रियाका कर्म था, वह तो अब अधिकरण-कारक बन गया, अतः कर्म अध्याहृत ही रह जाता है! और अब उसे वाक्यशेषसे लाना होगा। हो पाए

ऐसा वाक्यशेष कितना दूराकृष्ट, काल्पनिक, अवास्तविक एवं अप्रमा होगा! कम से कम कोई भी मान्य विवरणकारका समर्थन तो उसे नह मिलेगा।

दूसरी बात, यह उस समयकी बात है, जिस समयमें याग बहुल हिंसात्मक ही होते थे। एक राजा अन्य धर्मोंको समर्थन देता था उसका अर्थ नहीं कि वह हिंसात्मक यागोंको भी समर्थन भी देता था। राजा सिद्धार्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनधर्मका पार्श्वापत्य श्रमणोपासक था। वह कभी भी हिंसात्मक यागोंका समर्थन कर नहीं सकता। क्योंकि ऐसे समर्थनमें तो अहिंसाका मूल जैन सिद्धांत ही खतम हो जाता। और अपने यहां पुत्र जन्मकी खुशाली जैसे मांगलिक अवसर पर ऐसा जैन राजा हिंसा को उत्तेजन दे - यह बात ही नितान्त असंभवित है।

और तीसरी बात : सभी विवरणकारोंने 'जाए' को द्वितीयान्त पद ही माना है। यावत् पंडित बेचरदास दोशीने भी अपने सूत्रानुवादमें[१२] यागोने - देवपूजाओने, दायोने - दानोने अने भागोने' ऐसा ही अर्थ स्वीकारा है। इस बातको भी हम कैसे नजरअंदाज करेंगे ?।

यद्यपि ज्ञाताधर्मकथांगमें प्रथम अध्ययन (मेघकुमार-ज्ञान) में भी यही पाठ-वर्णक देखने मिलता है, और वहां एक पाठांतर भी है - "जाएहि, भाएहि, दाएहि य"। यहां तीनों पद तृतीयान्त है, जिसका मतलब है - यागैः, भागैः, दायैः। अर्थात् यागों द्वारा, भाग द्वारा, दाय (दान) द्वारा। किन्तु वहां भी जाए, भाए, दाए - ऐसा पाठ तो है ही। और द्वितीयान्त हो या तृतीयान्त, 'याग' पद होगा तो 'पूजा' परक ही, उसमें कोई तफावत नहीं पडता है।

अन्ततः यह सिद्ध होता है कि कल्पसूत्रमें प्रयुक्त 'याग' शब्द 'देवपूजा' परक है, और आर्य भद्रबाहुस्वामीने अपनी विलक्षण प्रतिभाके उपयोग द्वारा, उनके समयमें हिंसात्मक कर्मकाण्डोंमें रूढ बन गये हुए इस 'याग' शब्दको, कल्पसूत्रमें प्रयुक्त करके एक अजीब-सा नया ही मोड दे दिया है, और इसके द्वारा 'हिंसात्मक याग' का गर्भित निषेध भी कर दिया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पणी

१. (1) यशोभद्रः सूरिस्तदनु समभूद् विश्वविदितः
ततः सूरिः ख्यातोऽजनि जगति सम्भूतिविजयः ।
तथा भद्राद्बाहू रचितवरनिर्युक्तिततिको
वराहोऽमत्योक्तं ह्यशिवमहरद् यः स्तवनतः ॥३॥
— गुरुपर्वक्रमवर्णनम् । कर्त्ताः गुणरत्नसूरिः । र.सं. १४६६
पट्टावली समुच्चयः १, सं. मुनिदर्शनविजय-त्रिपुटी । प्रका. ई.१९३३
चारित्र स्मारक ग्रंथमाला, वीरमगाम ।

(2) छट्ठो संभूय-भद्दगुरू ॥
— वा. धर्मसागरकृत तपागच्छपट्टावली । गा. ३ ॥ एजन पृ.४२ ॥

२. (1) तं जहा – थेरे अज्जभद्दबाहू पाईणसगोत्ते ॥
कल्पसूत्र, पृ. २८८ । संपा. आ. देवेन्द्रमुनि शास्त्री । ई. १९७२ । तारकगुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर ॥

(2) भद्दबाहुं च पाइन्नं ।
नंदीसूत्रगत पट्टावली, गा. २४ ॥
पट्टावलीसमुच्चय-१, पत्र १० । संपा. मुनिदर्शनविजयजी, ई. १९३३ वीरमगाम ॥

३. कल्पसूत्रका हिन्दी विवरण : आ. देवेन्द्रमुनि शास्त्री । ई. १९७३ पृ. २८८ । "दशाश्रुत, बृहत्कल्प, व्यवहार और कल्पसूत्र ये आपके द्वारा रचे गये हैं। आवश्यकनिर्युक्ति आदि दस निर्युक्तियों की रचना भी आपने की है।"

४. "यागः, पुं । इज्यते इति । 'यज्ञः' इत्यमरः । तत्र श्रौताग्निकृत्य हविर्यज्ञ सप्त० ॥"
— शब्दकल्पद्रुम-४, स्यार-राजा राधाकान्तदेव बाहादुर, कलकत्ता ।
शकाब्दः १८१४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कल्पसूत्र : संपा. मुनि पुण्यविजयजी, पृ. ३४ । प्र. नवाब, अमदावाद. ई. १९५२ ॥

"यागान् - देवपूजाः " ।
— सन्देहविषौषधि-कल्प. टीका । जिनप्रभसूरिकृत । (र.सं. १३६४)।
प्र. हीरालाल हंसराज, जामनगर, ई. १९९३, पृ. ८८ ॥

"समणस्स णं भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो पासावच्चिज्जा समणोवासगा यावि होत्था ।"
— आचारांग सूत्र : श्रुतस्कंध २, चूलिका ३ ॥ सं. मुनि जम्बूविजय । पृ. २६५ । प्र. महावीर जैन विद्यालय, मुंबई । ई. १९७७ ॥

(1) "यजीं देवपूजायां इति धातोर्यागान् - देवपूजाः, देवशब्देनाऽर्हत्प्रतिमा वाच्यतयाऽवगन्तव्याः । यतो भगवन्मातापित्रोः श्रीपार्श्वनाथापत्यत्वेन श्रमणोपासकत्वादन्याभिधेयत्वासम्भवः ।"
- कल्प. किरणावली । वा. धर्मसागरकृत । पत्र ८७/२ । प्रका. जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर । ई. १९१२ ॥

(2) "याग अनेक कर्या कह्यां , श्रीसिद्धारथ राजे रे ,
ते जिनपूजना कल्पमां , पशुना याग न छाजे रे
श्रीजिनपासने तीरथे , समणोपासक तेहो रे ।
प्रथम अंगे कह्यो तेहने , श्रीजिनपूजानो नेहो रे"
— वीरस्तुतिरूप हुंडी-स्तवन, कर्ता : वा. यशोविजयजी, ढाल ३, गा. १२-१३ । प्रका. सलोत अमृतलाल अमरचंद पालीताना, वि.सं. १९७९ ॥

यागः । . . . . . गन्धादिना देवपूजायाम् । "गन्धपुष्पादिना देवपूजा यागोऽभिधीयते" ।
— शब्दार्थचिन्तामणि, कर्त्ता : सुखानन्दनाथ, उदयपुर । वि.सं. १९४२ ॥

"लाखों प्रकारके यागों (पूजा सामग्रियां)"
— कल्पसूत्र, हिन्दी विवरण पृ. १३८ : आ. देवेन्द्रमुनि शास्त्री ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. "यागान् - अर्हत्प्रतिमापूजाः कुर्वन् कारयंश्चेति शेषः" ॥
— कल्प. सुबोधिका , पृ. १३६/१ कर्त्ता : उपा. विनयविजयजी ।
प्र. जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, ई. १९१५ ॥

१२. पं. बेचरदास दोशी : कल्पसूत्र - अनुवाद, प्र. साराभाई नवाब, अमदावाद.
पृ. ३५. ई. १९५२. .

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org